R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-7 जुलाई 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

जुलाई का E - अंक

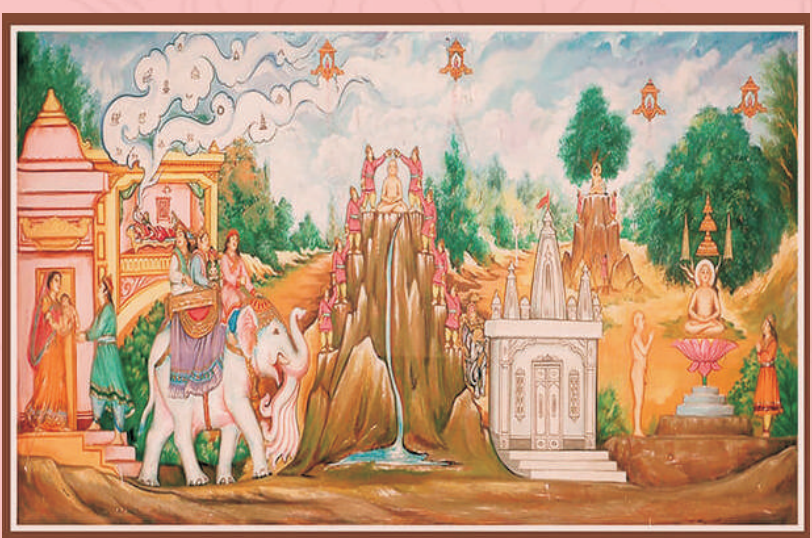

तीर्थङ्करों के पञ्चकल्याणक

भरत एवं ऐरावतक्षेत्र में सभी तीर्थङ्करों के पञ्चकल्याणक होते हैं। यहाँ पूर्व भव में तीर्थङ्कर प्रकृति बाँधने वाले जीव ही आते हैं, लेकिन विदेहक्षेत्र में तीन या दो कल्याणक वाले तीर्थङ्कर भी होते हैं। क्योंकि वहाँ वर्तमान भव में दीक्षा के पहले और दीक्षा के बाद तीर्थङ्कर प्रकृति बाँधने वालों के क्रमशः तीन और दो कल्याणक होते हैं तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय तेरहवें गुणस्थान में होता है। उसके निमित्त से धर्मतीर्थ का प्रवर्तन होता है। तीर्थङ्कर परमात्मा तेरहवें गुणस्थान के अन्त में योगनिरोध करते हैं और पश्चात् चौदहवें गुणस्थान में किञ्चित समय व्यतीत करके मुक्ति प्राप्त करते हैं। उनका शरीर कपूर के समान उड़ जाता है। मोक्षकल्याणक के प्रसंग में देवगण उत्सव मनाते हैं और उनके मायामयी शरीर तथा नख केश का अग्नि संस्कार करते हैं।

अशरीरी सिद्ध भगवान! आदर्श तुम्ही मेरे

श्री मुकेशचन्द्र जैन मेरठ के परिवार की ओर से सम्पन्न

शान्तिविधान की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-7 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) जुलाई 2021

दिव्यध्वनि वीरा...

दिव्यध्वनि वीरा खिराई आज शुभ दिन,
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम् ।।टेक ।।
आतम स्वभावं परभाव भिन्नम्
आपूर्णमाद्यंत-विमुक्तमेकम् ।।

मेरे प्रभु विपुलाचल पर आये, वैशाखी दशमी को घातिया खिपाये;
क्षण में लोकालोक लखाये, किन्तु न प्रभु उपदेश सुनाये।
वाणी की काललब्धि आई नहीं उस दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम् ।।1 ।।

इंद्र अवधिज्ञान उपयोग लगाये, समवसरण में गणधर न पाये;
इन्द्रभूति गौतम में योग्यता लखाये, वीर प्रभु के दर्शन को आये।
काललब्धि लेकर के आई आज गौतम;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम् ।।2 ।।

मेरे प्रभु ॐकर ध्वनि को खिराये, गौतम द्वादश अंग रचाये;
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् समझाये, तन चेतन भिन्न-भिन्न बताये।
भेद-विज्ञान सुहायो आज शुभ दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम् ।।3 ।।

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं, स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्;
विकल्प जाल च्युत शांतचित्तास्त एव साक्षातमृतं पिबंति।
स्वानुभूति की कला सिखाई आज शुभदिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम् ।।4 ।।

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमान् भीमजी भगवानजी शाह
हस्ते **श्री विजेन वी. शाह,**
फ्लैट नं. - 9, मैपलेवुड कोर्ट,
31-इस्टवरी एवेन्यु,
नार्थवुड मिडिलसेक्स
- एच.ए. 63 एल.एल.
(यू.के.)

क्या - कहाँ

समयसार	5
श्री समयसार नाटक.....	11
आत्मा कौन है....	19
श्रुत परम्परा एवं....	27
आचार्यदेव परिचय शृंखला	28
प्रेरक प्रसंग	31
जिस प्रकार....	33
समाचार-दर्शन	34

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

समयसार

[पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

जब-जब समयसार के प्रवचनों का प्रारम्भ होता है, तब-तब स्वामीजी पहली गाथा में मंगलाचरण करते हुए जिस अचिंत्य प्रमोद से सिद्धपने की स्थापना की बात करते हैं, उसे सुनकर श्रोताओं का आत्मा इस प्रकार उल्लसित हो जाता है मानों सिद्ध भगवान का साक्षात्कार हो गया हो... 'मैं सिद्ध, तू सिद्ध'—इस प्रकार आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना करके आचार्यदेव यह समयसार सुनाते हैं—इसका स्वीकार कर... और चला आ सिद्धपद में।

'नमः समयसार' इस मंगल में स्वामीजी कहते हैं कि—यह अप्रतिहत मंगलाचरण है... समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा, उसे हम नमस्कार करते हैं, अर्थात् समस्त संसार और सासांरिक वृत्ति के भाव से हम सकुचते हैं और चिदानन्द-ध्रुव स्वभावी ऐसे समयसार में समा जाना चाहते हैं। बाह्य या अन्तर संयोग की इच्छा स्वप्न में भी नहीं है... बाह्य भाव तो अनन्त काल तक किये... अब हमारा परिणमन अन्तरोन्मुख हो रहा है। अप्रतिहत भाव से अन्तरस्वरूप में ढले सो ढले... अब हमारी शुद्ध परिणति को रोकने में जगत में कोई समर्थ नहीं है।

अहो! समयप्राभृत का प्रारम्भ करते हुए सर्व सिद्धभगवन्तों को आत्मा में उतारकर आचार्यदेव अपूर्व मंगलाचरण करते हैं। आत्मा में साधक स्वभाव का प्रारम्भ हो, वह अपूर्व मंगल है। आत्मा का परमध्येय ऐसा जो सिद्धपद, उसे साधने का जो भाव प्रगट हुआ अर्थात् सिद्धसन्मुख जाने का प्रारम्भ किया, वही मांगलिक है। अभी तक अनन्त सिद्धभगवन्त हुए, उन सबको भावस्तुति तथा द्रव्यस्तुति द्वारा अपने आत्मा में तथा पर के आत्मा में

स्थापित करके यह समयसार प्रारम्भ करता हूँ। भावस्तुति अर्थात् अन्तर्मुख निर्विकल्प शान्तरस का परिणमन और द्रव्यस्तुति अर्थात् सिद्धों के बहुमान का विकल्प तथा वाणी—इस प्रकार दोनों प्रकार से स्तुति करके, अपने तथा श्रोताजनों के आत्मा में अनन्त सिद्ध भगवंतों की स्थापना करता हूँ। आत्मा कितना?—तो कहते हैं कि अनन्त सिद्धों को अपने में समा ले उतना। आत्मा में जहाँ सिद्धों को स्थापित किया, वहाँ अब उसमें राग नहीं रह सकता। जहाँ सिद्धों का आदर किया, वहाँ राग का आदर नहीं रहता; इसलिए अपने में सिद्ध की स्थापना करते ही राग के साथ की एकत्वबुद्धि टूट गई और साधकदशा का प्रारम्भ हुआ, वही अपूर्व मंगल है। पंचम काल का साधक अपने सिद्धपद का प्रस्थान रखता है कि हे सिद्ध भगवन्त! मैं सिद्धपद को साधने चला हूँ, वहाँ प्रारम्भ में ही अपने आत्मा में आपको स्थापित करता हूँ... और हे श्रोताजन! तुम्हारे आत्मा में भी सिद्धत्व की स्थापना करता हूँ... उल्लासपूर्वक हाँ कहना... अस्वीकार मत करना। हमारा श्रोता ऐसा ही होता है जो अपने आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना करके सुने। अकेले राग में खड़ा रहकर नहीं सुनता, परन्तु पहली ही बार में सिद्धपद की भनक ले आता है। 'मैं सिद्ध... तू भी सिद्ध!'—ऐसा सुनते ही आत्मा अन्तर से स्वीकृति देता है।

यह समयसार भरतक्षेत्र का अलौकिक अमृतरस से भरपूर शास्त्र है। मंगलाचरण में ही सिद्धपद की स्थापना करके साधकपने का अपूर्व प्रारम्भ कराते हैं।

अहा! चैतन्य के साथ सम्बन्ध जोड़ने से निर्मल साधकभाव की सन्तति प्रारम्भ होती है। सिद्धपद को पूर्ण ध्येय बनाकर साधक चला कि—हे सिद्धभगवन्तों! अब में आपकी जाति में आता हूँ... संसार से—राग से पृथक होकर सिद्ध की—शुद्धात्मा की जाति में मिलता हूँ।

देखो तो यह कुन्दकुन्दस्वामी की रचना! अहा, भरतक्षेत्र में जन्म लेकर जिन्होंने शरीर सहित विदेहक्षेत्र जाकर तीर्थंकर भगवान के साक्षात् दर्शन

किये, उनकी पात्रता और पुण्य की क्या बात!! वे कहते हैं कि—केवली और श्रुतकेवली भगवन्तों द्वारा कहे हुए इस समयप्राभृत को मैं अपने और पर के मोह के नाश के लिये कहूँगा। सिद्ध समान आत्मा को ध्येयरूप रखकर यह प्रारम्भ किया है, इसलिए उस ध्येय को चूकना नहीं। जो इस समयसार को समझेगा, उसके मोह का नाश हो जायेगा।—ऐसा आचार्यदेव की प्रतिज्ञा वचन है।

मोक्षार्थी जीव के अन्तर में एक पुरुषार्थ का ही घोलन है कि किस प्रकार मैं अपने आत्मा को साधूँ?—कैसे अपने आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को प्रगट करूँ? आत्मा में सतत ऐसी धुन वर्तती होने से जहाँ सन्त-गुरु ने उसके श्रद्धा ज्ञानादि का उपाय बतलाया कि तुरन्त उसके आत्मा में वह परिणमित हो जाता है। जिस प्रकार धन का अर्थी मनुष्य राजा को देखते ही प्रसन्न हो उठता है और उसे विश्वास हो जाता है कि अब मुझे धन की प्राप्ति होगी और दरिद्रता नष्ट हो जाएगी; उसी प्रकार आत्मा का अर्थी मुमुक्षु जीव आत्मप्राप्ति का उपाय दर्शानेवाले सन्तों को देखते ही परम प्रसन्न होता है... उसका आत्मा उल्लसित हो जाता है कि—अहा! मुझे अपने आत्मा की प्राप्ति करानेवाले सन्त मिले... अब मेरे संसार दु:खों का अन्त आयेगा और मोक्षसुख की प्राप्ति होगी। ऐसा उल्लास एवं विश्वास लाकर, फिर सन्त-धर्मात्मा जिस प्रकार चैतन्य की साधना का उपाय बतलायें, तदनुसार समझकर स्वयं सर्व उद्यम से, चैतन्य को अवश्य साधता है।

जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसे ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करके उसका राग से भिन्न अनुभव करना ही उपाय है। जब तक जीव ऐसा अनुभव न करे और विकल्पों के वेदन में रुका रहे, तब तक वह, आत्मा के चाहे जैसे विकल्प करता रहे, तथापि उससे क्या? उन विकल्पों से कोई सिद्धि नहीं है; इसलिए उन विकल्पों के जाल को लांघकर ज्ञानस्वभाव का अनुभव करो—ऐसा आचार्यदेव उपदेश करते हैं।

स्वभाव का अवलम्बन लेकर आत्मा की शुद्धता का अनुभव करे, तब साधकपना और कृतकृत्यता होती है। भाई, विकल्पों के अवलम्बन में कहीं भी मोक्षमार्ग नहीं है; उससे पृथक् हो और ज्ञानस्वभाव में अपने उपयोग को लगा... अन्तर्मुख होकर अतीन्द्रिय आनन्दरस के घूंट पी। ऐसी धर्मात्मा की अनुभव दशा है और यही उस अनुभव का उपाय है।

चैतन्य का वास्तविक स्वरूप क्या है, उसे समझे बिना अज्ञान के कारण जीव ने चारों गति में अनन्त दुःख प्राप्त किये... उस दुःख से जो भयभीत हुआ है, चैतन्यतत्त्व के सिवा जगत के अन्य किसी पदार्थ में जिसे सुख भासित नहीं होता, वह जीव चैतन्यस्वभाव का निर्णय करके ज्ञान को स्वसन्मुख करता है; बीच में आनेवाले विकल्पों को ज्ञान से भिन्न जानकर लांघ जाता है। इस प्रकार विकल्प के पृथक् होकर ज्ञानस्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति करता है, वह 'समयसार' है, वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है। ऐसी प्रतीति करना, वह चार गति के अनन्त दुःखों के छूटने का उपाय है।

जो सच्ची लगनवाला है, आत्मा का सच्चा प्रेमी है, वह जीव दुर्विकल्पों में तो नहीं अटकता और स्वानुभव से पहले बीच में आ पड़े भेद-विकल्पों में भी वह अटकना नहीं चाहता; उन्हें भी पार करके स्वानुभव में ही पहुँचना चाहता है। किस प्रकार स्वानुभव में पहुँचता है—वह बात आचार्यदेव ने १४४वीं गाथा में बड़ी अच्छी तरह अलौकिक ढंग से समझायी है। ज्ञानस्वभाव की ओर ढलते-ढलते अभी जब तक साक्षात् ज्ञान में नहीं आया, तब तक बीच में ऐसे विकल्पों का जाल आयेगा, उसे बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि उस विकल्प जाल में तू उलझ मत जाना, परन्तु ज्ञान को उससे पृथक् करके उस विकल्प जाल को पार कर जाना... ज्ञान को अन्तर में ले जाना... ऐसा करने से निर्विकल्प स्वानुभव का आनन्द तेरे अनुभव में आयेगा।

अहा, दृष्टि बदलने से सब बदल जाता है। भाई, अपने उपयोग को बदलना है; उपयोग का लक्ष्य बाह्य में रुकने से संसार में परिभ्रमण हो रहा है; यदि उपयोग अन्तरोन्मुख हो जाये तो संसार का अन्त होकर मोक्ष की प्राप्ति हो। जो जीव ज्ञानस्वभाव में अन्तर्मुख और विकल्प से भिन्न हुआ है, उसे यदि अमुक प्रकार के राग के विकल्प हों, तथापि उनके ग्रहण का उत्साह नहीं है, उनके अवलम्बन की बुद्धि नहीं है; उत्साह तो चैतन्य की ओर ही लग गया है; बुद्धि में अर्थात् भावश्रुतज्ञान में एक चैतन्यस्वभाव का ही अवलम्बन है।—**ऐसा सम्यक्त्वी धर्मात्मा नयपक्ष से अतिक्रान्त हुआ शुद्ध आत्मा है, वही 'समयसार' है।**

अहा! निर्विकल्प अनुभव के समय सम्यक्त्वी धर्मात्मा कैसे होते हैं, उस बात की तुलना भगवान केवलज्ञानी के साथ करके आचार्यदेव ने वह अलौकिक ढंग से समझायी है। जिन-जिन जीवों को सम्यग्दर्शन हो, उनकी ऐसी दशा होती है।

हे भव्य! कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण और सम्बन्ध—इन सातों विभक्तियों के वर्णन द्वारा हमने तेरे आत्मा को पर से अत्यन्त विभक्त बतलाया; इसलिए अब अपने आत्मा को सबसे विभक्त तथा अपनी ज्ञानादि अनन्त शक्तियों के साथ एकमेक जानकर तू प्रसन्न हो... स्वभाव का ही स्वामी होकर पर के साथ सम्बन्ध के मोह को छोड़।

* स्वभाव का कर्ता होकर पर के साथ की कर्ताबुद्धि छोड़।
* स्वभाव के ही कर्मरूप होकर अन्य कर्म की बुद्धि छोड़।
* स्वभाव को ही साधन बनाकर अन्य साधन की आशा छोड़।
* स्वभाव को ही सम्प्रदान बनाकर निर्मल भाव को दे।
* स्वभाव को ही अपादान बनाकर उसमें से निर्मलता ले।
* स्वभाव को ही अधिकरण बनाकर पर का आश्रय छोड़।
* स्वभाव का ही स्वामी होकर उसके साथ एकता का सम्बन्ध कर और पर के साथ का सम्बन्ध छोड़।

—इस प्रकार समस्त पर से विभक्त और निजस्वभाव से संयुक्त ऐसे अपने आतमराम को जानकर उसके अनुभव से तू आनन्दित हो... प्रसन्न हो!

वन में वास करनेवाले तथा आत्मा के आनन्द के स्वाद में झूलते हुए वीतरागी दिगम्बर सन्त अपना स्वानुभव प्रगट करते हैं कि—अहो! चैतन्य की सन्मुखता से अनुभव में आनेवाला यह अतीन्द्रिय सुख किसी विकल्प में नहीं था; किन्हीं बाह्य पदार्थों में इस सुख की गन्ध भी नहीं थी; अनन्त काल के शुभाशुभ विकल्पों में कभी ऐसे सुख का अनुभव नहीं हुआ था। चैतन्य का जिसे लक्ष्य भी नहीं है, उसे तो सुख क्या और दु:ख क्या—उसकी भी खबर नहीं है; तो फिर दु:ख दूर करने का और सुख प्राप्त करने का सच्चा उपाय तो उसके कहाँ से होगा?

अरे जीव! ऐसा अवतार पाकर यदि तुझे भवभ्रमण के दु:ख से छूटने की कला न आयी तो तूने यह अवतार पाकर क्या किया? सुख का उपाय अर्थात् भेदज्ञान की कला जाने बिना अन्य जो कुछ करे, वह सब अरण्य-रोदन की भाँति वृथा है। जो भेदज्ञान करे, उसे अन्तर से भव-अन्त की भनक और सिद्धपद का सन्देश आ जाता है कि—अब भव का नाश करके सिद्धपद अल्प काल में ही प्राप्त करेंगे।

[—यहाँ तो समयसार-प्रवचनों का थोड़ा-सा प्रसाद दिया गया है; समयसार की महिमा का पूरा ख्याल तो तभी आ सकता है, जब पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों में बहते हुए अध्यात्म-रस को झेलकर साक्षात् पान किया जाये, तब ही वास्तव में समयसार की महिमा का सच्चा ख्याल आये। सचमुच में समयसार स्वामीजी का साथी है। एक बार उन्होंने प्रवचन में कहा था कि—इस समयसार में अत्यन्त गम्भीर-गहरे भाव भरे हैं... जीवन के अन्तिम श्वास तक इसकी स्वाध्याय और मनन करने जैसा है।]

ग्रन्थाधिराज समयार की जय हो!

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

शुद्धनय की अपेक्षा जीव का स्वरूप

आदि अंत पूरन-सुभाव-संयुक्त है।
पर-सरूप-पर-जोग-कल्पनामुक्त है॥
सदा एकरस प्रगट कही है जैन मैं।
सुद्धनयातम वस्तु विराजै बैनमैं ॥11 ॥

अर्थः- जीव, आदि अवस्था निगोद से लगाकर अन्त अवस्था सिद्ध पर्यायपर्यन्त अपने परिपूर्ण स्वभाव से संयुक्त है और परद्रव्यों की कल्पना से रहित है, सदैव एक चैतन्य रस से सम्पन्न है, ऐसा शुद्धनय की अपेक्षा जिनवाणी में कहा है॥11 ॥

काव्य - 11 पर प्रवचन

अब, शुद्धनय की अपेक्षा से जीव का स्वरूप कहते हैं-

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं मापूर्ण माद्यन्त विमुक्तं मेकं।।
विलीन संकल्प विकल्प जालं प्रकाशयन् शुद्धयोऽभ्युदेति।।

परमानन्दमूर्ति भगवान तीर्थंकरदेव ने देखा, ऐसा जो पवित्र आत्मा शुद्धनय से कैसा है- वह कहते हैं। पर्याय के भेद और राग, वह तो अशुद्धनय का विषय है। यहाँ शुद्धनय से आत्मा का स्वरूप कहते हैं।

यह एक-एक श्लोक वीतराग मार्ग का मक्खन है।

जीव आदि अवस्था निगोद से लगाकर अन्त अवस्था सिद्धपर्याय पर्यन्त अपने परिपूर्ण स्वभाव से संयुक्त है। जीव की आदि अवस्था निगोद है। आलू, शकरकन्द, गाजर ये सब निगोद अवस्था है। जीव अनादि से इस दशा में था। इस छोटी से छोटी निगोद दशा से लेकर सिद्ध होगा, वहाँ तक की समस्त दशाओं में वस्तु तो परिपूर्ण है। अवस्थाओं का लक्ष्य न करे तो द्रव्यस्वभाव पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण है। द्रव्य सदा पूर्णस्वभाव सहित है।

आलू, शकरकन्द आदि कन्दमूल के एक कण में असंख्य तो शरीर हैं और एक-एक शरीर में आज तक सिद्ध हुए उससे अनन्तगुने जीव हैं। यह भगवान की कही हुई बहुत मोटी बात है। जीव की निगोद अवस्था है वह बहुत छोटी है और सिद्धदशा पूर्ण है; परन्तु इन समस्त दशाओं में वस्तु तो सदा एकरूप परिपूर्ण है ध्रुव हैं।

अहाहा! यह भी क्या बात है! एक राई के बराबर कण में असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में अनन्त जीव; उन प्रत्येक का द्रव्य तो स्वभाव से परिपूर्ण भरा है। यह जीव का सदृश स्वभाव है। शक्ति के वर्णन में आता है कि सदृश और विसदृश जिसका रूप है- ऐसी अस्तित्वमात्रमयी परिणाम शक्ति आत्मा में है।

ये तो मोक्ष के मंडप की बातें हैं बापू! बाहर में दुनिया के महोत्सव तो अज्ञान में बहुत मनाये, परन्तु बापू! यह चीज कोई जुदी ही है।

भगवान ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। उनमें अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक और असंख्यात कालाणु हैं। उसमें से जीव किसी भी अवस्था में हो, छोटी से छोटी निगोद अवस्था में हो; परन्तु तब भी उसका द्रव्य तो पूर्ण स्वभाव से भरा ही रहता है। अतः कहते हैं कि अंश को लक्ष्य में न ले और द्रव्य को लक्ष्य में ले तो द्रव्य तो सदा पूर्ण-पूर्ण ध्रुव रहा है।

अहो! आचार्यों ने गजब काम किया है! आत्मा हथेली पर बताया है उस पर एक नजर तो कर!

एक समय की पर्याय का लक्ष्य, वह पर्यायदृष्टि है। उसे छोड़ दे तो द्रव्य तो सदा ध्रुव स्वभाव से सहित है। जिसको धर्म करना हो उसे यह समझना पड़ेगा; क्योंकि धर्म पूर्णस्वभाव में से ही निकलता है। वर्तमान अवस्था तो अंश है, उसमें से धर्म नहीं निकलता। धर्म स्वयं भी अंश है उस अंश के समय भी वस्तु ध्रुव-स्वभाव सहित है।

'पर सरूप परजोग कल्पना मुक्त है' –मेरे इस परद्रव्य का निमित्त है ऐसी कल्पना से भी वस्तु रहित है और परद्रव्य के लक्ष्य से होते विकृतभावों से भी वस्तु रहित है, एक समय की पर्याय से रहित है और पूर्ण ध्रुव स्वभाव से सहित है। वस्तु की ऐसी पहचान और सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान हुए बिना व्रत, तप करते हैं वे सब बिना एक की बिन्दियाँ हैं।

'आत्मस्वभावं परभावभिन्नम्' –इसके द्वारा अस्ति-नास्ति से वस्तु का स्वरूप बताया है। त्रिकाल ध्रुव शक्तिमान प्रभु अपने ध्रुव-स्वभाव से सहित है और पररूप निमित्त, कर्म और संयोग से रहित है। पररूप और परजोग अर्थात् पर का सम्बन्ध, उससे आत्मा रहित है। शुद्धनय स्वरूप से आत्मा ऐसा है।

लोग ऐसा कहते हैं कि इससे कुछ सरल है या नहीं ?

भाई ! जो वस्तु में हो, वह सरल होगा या नहीं ? सरल में सरल प्रथम धर्म सम्यग्दर्शन धर्म है, फिर चारित्र और केवलज्ञान तो महा उत्तमधर्म है।

मिथ्यात्व के समान महापाप नहीं और सम्यग्दर्शन के समान प्रथम धर्म नहीं है, परन्तु अज्ञानी को इन दोनों की खबर नहीं है। मिथ्यात्व में क्या पाप है- इसकी भी उसे खबर नहीं है। आत्मा को परद्रव्य से सहित मानना, वह मिथ्यात्व है और मैं पर के सम्बन्ध में हूँ- ऐसा मानना भी मिथ्यात्व है। आत्मा अबद्धस्पृष्ट है, पर के सम्बन्ध से रहित है।

यह बात समझने के लिए कितनी धीरज चाहिए !

आत्मा को पर का सम्बन्ध तो नहीं, परन्तु वह पर के सम्बन्ध की कल्पना से भी मुक्त है। **'सदा एक रस प्रकट कहो है जैन में, शुद्ध नयातम वस्तु बिराजै बैन में-'** वीतराग की वाणी में द्रव्य का-शुद्धनय का विषय इस प्रकार सदा एकरूप कहा है। तीनकाल-तीनलोक के जाननेवाले अरिहन्तदेव की वाणी में ध्रुव शुद्धनय का विषय सदा एकरूप प्रकट कहा है। वस्तु सदा प्रकट है।

दया पालने में धर्म मानते हो न ! तो आत्मा की दया तो पाल ! आत्मा को एक अंश जितना मानना, वह तो उसकी हिंसा है। रागवाला मानना, वह जीव की हिंसा है। आत्मा तो सदैव चैतन्यरस से सम्पन्न है, ज्ञायकरस से सम्पन्न है। शुद्धनय से वस्तु सदैव ऐसे स्वरूप से विराजमान है ऐसा जिनवाणी में कहा है।

हितोपदेश:-

सदगुरु कहै भव्यजीवनिसौं,
तोरहु तुरित मोह की जेल।
समकितरूप गहौ अपनौ गुन,
करहु सुद्ध अनुभव कौ खेल।
पुद्गलपिंड भाव रागादिक,
इनसौं नहीं तुम्हारौ मेल।
ए जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन,
जैसैं भिन्न तोय अरु तेल ॥12 ॥

अर्थ:- भव्य जीवों को श्रीगुरु उपदेश करते हैं कि शीघ्र ही मोह का बन्धन तोड़ दो, अपना सम्यक्त्वगुण ग्रहण करो और शुद्ध अनुभव में मस्त हो जाओ। पुद्गल द्रव्य और रागादिक भावों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। ये स्पष्ट अचेतन हैं और तुम अरूपी चैतन्य हो तथा पानी से भिन्न तेल के समान उनसे न्यारे हो ॥12 ॥

काव्य - 12 पर प्रवचन

यह श्री नाटक समयसार का जीवद्वार का 12वाँ श्लोक है, जो समयसार कलश 11 के पद्यानुवाद रूप है।

सद्गुरु कहते हैं कि प्रभु! मोह के बन्धन को तोड़। राग द्वेष और विकल्प मेरा है ऐसा जो मोहभाव है उसे तोड़ ! उपदेश का कथन है, अत: 'मोह को तोड़' -ऐसा आता है, परन्तु वस्तुत: तो स्वभाव के सन्मुख होने पर मोह टूट जाता है।

पुण्य-पाप भावों की एकताबुद्धि, वह मोह की जेल है। उसको शीघ्र तोड़, ऐसा कहा है। पहले व्यवहार सुधारो, फिर उसमें आगे बढ़कर मोह को तोड़ने जाओ, ऐसा नहीं कहा; क्योंकि धर्म के प्रारम्भ होने के पूर्व जो शुभराग होता है, वह कोई व्यवहार नहीं है। आत्मा को शुभ उपयोग से सहित मानना, यही मोह की जेल है। सूक्ष्म से सूक्ष्म विकल्प की एकता-बुद्धि, वह भी मोह की जेल है। पर में सावधानी ही मिथ्यात्व भाव है। अनादि से शरीर में, राग में, विकल्प में निजपना माना है, पर में सावधानी की है, वही मोह है; वही मिथ्यात्व है और वही अनन्त संसार का बीज है।

'तोरहूँ तुरित मोह की जेल' -अपने ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द स्वरूप के सन्मुख होकर राग की एकता की मिथ्यात्वभावना को छोड़ दे।

कोई ऐसा कहते हैं कि सर्व प्रथम जीवों को प्रथमानुयोग का उपदेश देना चाहिए, फिर द्रव्यानुयोग का उपदेश हो। अरे भाई! यह आयुष्य तो चला जा रहा है, कोई इसकी मर्यादा की तो खबर है नहीं, अकस्मात् देह छूट जाये तो जो काम करना है, वह तो रह जायेगा। यहाँ तो आचार्यदेव ने कहा है कि शीघ्र मोह की जेल को तोड़ दो। पहले यह बाँचो पढ़ो; फिर मोह तोड़ो- ऐसा नहीं। अनादि से राग की एकता कर रखी है, उसे शीघ्र तोड़ दो।

यह तो जिसको जन्म-मरण के चक्कर से छूटना हो- उसके लिए बात है, जिसे बचाव करना हो उसके लिए बात नहीं है।

'करना वह तो मरना है' राग करना, वह मेरा कार्य है- ऐसी मान्यता तो सम्यग्दर्शन का नाश करती है।

मोह का बन्धन माने मोहकर्म का बन्धन नहीं। यहाँ तो मोहभाव का बन्धन शीघ्र तोड़ दे- ऐसा कहते हैं। 'समय वर्ते सावधान' कहते हैं न! अर्थात् स्वरूप की - स्वभाव की सावधानी में वर्तो । राग की सावधानीरूप अशुद्धता को छोड़ दो। कन्या पधराओ सावधान! नहीं, मोक्ष कन्या को पधराओ। हाड़ और मांस के मंथन के मैथुन में तू सुख मानता है प्रभु! तुझे क्या हुआ है? इसमें सुख मानता है, वही मिथ्यात्व है।

जड़ की प्रत्येक क्रिया स्वतन्त्र होती है, वह कोई तुझसे नहीं होती। तुझसे तो अज्ञानदशा में उस क्रिया के राग में एकत्वबुद्धि होती है, वह मोह है। राग की सावधानी वही मिथ्यात्वभाव है। इसको ऐसा लगता है कि मैं दया पालता हूँ, परन्तु किसकी दया ? भाई ! पर की दया का भाव तो विकल्प है, राग है, विभावभाव है और उस राग के साथ एकत्व बुद्धि, वह तो मिथ्यात्व है। राग और आत्मा के स्वभाव के बीच भेद है, एकता नहीं। उन्हें एक मानना ही मिथ्यात्व है।

आनन्द, शान्ति, सुख, ज्ञानादि सब आत्मा में हैं और जहाँ ये नहीं वहाँ तू नजर रखकर बैठा है कि इसमें से मुझे सुख-शान्ति मिलेगी। अपने भगवान के सामने भी देखता नहीं। स्वभाव में नजरबन्दी नहीं करता और राग में नजरबन्दी करके बैठा है। राग के साथ एकता की है यही महामोह और महाबन्धन है।

भगवान तो रागरहित शुद्ध चैतन्यघन स्वभावी है। उसमें झुकने जैसा है, उसके बदले जहाँ झुकने जैसा नहीं- ऐसे राग में यह झुक गया है; अतः कहना पड़ता है कि मोह को तोड़ ! राग की एकता में झुका न होता तो ऐसा कहना नहीं पड़ता। चाहे कितनी भी उपवास करे परन्तु उप माने स्वभाव की समीप वास न करे, वह राग की वासना में ही बसा हुआ है। वह स्वभाव से तो दूर ही है।

शरीर का क्षणमात्र का भी भरोसा नहीं है। प्रभु ! पहले अपना हित कर ले !

भगवान तीर्थंकर देव कहते हैं- प्रभु ! तू परमात्मा की जाति का है, परमात्मा के कुल का है। सिद्ध की जाति का होकर तू राग में रुका है यह तुझे कलंक है। भाई ! आचार्यदेव और ज्ञानी सन्त भी यही उपदेश देते हैं। जो अनादि से करता आया है, उसे छोड़कर अब आत्मा का कल्याण कर !

अनादि से तूने जड़ के कार्य तो कभी किये ही नहीं, परन्तु मैं जड़ का कार्य कर सकता हूँ ऐसी मिथ्यामान्यता की है। अज्ञानी को ऐसा लगता है कि

जैसा निमित्त होता है, रजकण का वैसा परिणमन होता है। रजकण अपने आप से ही परिणमता हो तब तो एकरूप परिणमन कैसे नहीं हो ? अतः जिस जाति का निमित्त हो, उस अनुसार रजकण परिणमता है; परन्तु भाई ! रजकण का परिणमन एकरूप ही हो ऐसा नहीं है। रजकण की अवस्था एकरूप होती ही नहीं।

'समकितरूप गहो अपनो गुन'– अर्थात् श्रद्धा गुण तो त्रिकाल है, परन्तु वर्तमान पर्याय में उसे पकड़ो। विभाव और राग, वह कोई अपना गुण नहीं है। अर्थात् अपनी पर्याय नहीं है। राग तो जड़ की दशा है। जिस राग से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, वह राग भी जड़-अचेतन है। भगवान (आत्मा) तो चैतन्यरस का कन्द है और समकित, वह उसका गुण अर्थात् पर्याय है। उसे प्रकट करना वह प्रथम में प्रथम बात है।

'करहू शुद्ध अनुभव को खेल'– समकित ग्रहण करके शुद्ध अनुभव में मस्त हो जाओ। (जीव) राग की मिठास का अनुभव करता था, वह तो मिथ्यात्व का अनुभव है। अब 'करहू' कहकर ज्ञायक का खेल करने को- मस्ती करने को कहते हैं। अन्य के साथ की मस्ती छोड़कर स्वभाव में मस्ती कर न ! प्रिय से प्रिय वस्तु तो तेरी अपनी है। उसमें खेल कर ! अनादि से राग का खेल तो करता आया है, वह तो अधर्म का खेल है।

हमारे क्या करना ? कि अनादि का राग करना छोड़कर स्वभाव का खेल कर ! अनुभव का खेल होने पर राग की एकता का खेल समाप्त हो जाता है।

'पुद्गल पिण्ड भाव रागादिक इनसौं नाहीं तुम्हारो मेल'– पुद्गल पिण्ड जो शरीर, वाणी, मन तथा रागादिक भाव वे भी वास्तव में पुद्गल है, उनके साथ जीव का कुछ सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि तुम (जीव) तो जागृत चैतन्य स्वभाव के रसकन्द हो और ये रागादिभाव तथा रजकण तो अचेतन और जड़स्वभावी हैं। इन दोनों का कहीं मेल बैठता ही नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, उसे भी अपना स्वभाव माने; वह मिथ्यादृष्टि है। उसको जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी की खबर ही नहीं है। भगवान

कहते हैं कि चेतन और अचेतन का किसी जाति का सम्बन्ध नहीं है।

'ए जड़ प्रकट गुपत तुम चेतन'– शरीर से लेकर रागादि प्रकट जड़ हैं। तू उन सबसे भिन्न चैतन्य स्वरूप है। विकल्पमात्र अचेतन है, उससे तुझे लाभ कैसे हो ? अरे ! यह बात सुनने को मिलती नहीं, जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जाती है। अरे ! इसकी दया कौन करेगा ? एक आसन से बैठकर तीस सामायिक करे तो भी जड़ और चेतन की भिन्नता जाने बिना उसका हित किसप्रकार से हो ?

जैसे तेल और पानी भिन्न है, वैसे ही जड़ और चेतन भिन्न है। पुण्य का विकल्प भी प्रकट जड़ है; क्योंकि उसमें चैतन्य प्रकाश के ज्ञान का एक अंश भी नहीं है। जैसे प्रकाश और अन्धकार का कहीं मेल नहीं बैठता। प्रकाश और अन्धकार पृथक् है, वैसे ही ज्ञान और राग भिन्न है। ज्ञान और राग दोनों हैं, परन्तु दोनों एक नहीं है।

भगवान आत्मा चैतन्य सूर्य है और दया, दान, रागादि तो अचेतन हैं, तो इन चेतन और अचेतन में मेल किस प्रकार हो ? दो का एक खेल नहीं हो सकता।

बड़े-बड़े महन्त नाम धरानेवाले भी मिथ्यात्व में गोते खाते हैं और स्वयं की मिथ्या मान्यताओं को दुनिया को परोसते हैं। जो जड़ की क्रिया अथवा क्रिया के विकल्प को चैतन्य भगवान के साथ मिलाते हैं, वे महा मिथ्यात्व के अन्धकार में पड़े हैं।

तेरा चैतन्यस्वभाव राग में आया नहीं। भाई ! वह तो राग से भिन्न गुप्त है। तू तो अरूपी चैतन्य है और राग तो अचेतन है। तेरा और इसका मेल नहीं है। जैसे तेल और पानी कभी नहीं मिलते, भिन्न ही रहते हैं; क्योंकि तेल चिकनाहटवाला है, जबकि पानी स्वच्छ निर्मल है। वैसे ही भगवान चैतन्य प्रकाशी आत्मा राग से अत्यन्त भिन्न है, गुप्त है। राग तो प्रकट है, रूपी है और अचेतन है। भगवान आत्मा गुप्त, अरूपी और चेतन है; इन दोनों को तू भिन्न जान।

क्रमशः

गतांक से आगे....

आत्मा कौन है और किसप्रकार प्राप्त हो ?

(श्री प्रवचनसार के परिशिष्ट में 47 नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के विशिष्ट अपूर्व प्रवचनों का सार)

आत्मा कैसा है – ऐसा शिष्य ने पूछा था, उसका यह वर्णन चलता है। जिसे अंतर से खटका मारता हुआ आत्मा का प्रश्न उठा, ऐसे शिष्य को आत्मा समझ में आकर मुक्ति हुए बिना नहीं रहेगी। जिसे आत्मा को समझने की आतुरता जागृत हुई है, वह जीव अनंत धर्मवाले आत्मा को समझेगा और अनंत धर्मों में जितने अव्यक्त-शक्तिरूप हैं, वे सब उसे पूर्ण व्यक्त हो जायेंगे। अनंत धर्मवाले आत्मा की रुचि-प्रतीति की, उसके केवलज्ञानादि समस्त धर्म विकसित हुए बिना नहीं रहते। केवलज्ञान पूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण है, श्रुतज्ञान पूर्ण प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि केवलज्ञान में जैसा आत्मा ज्ञात हुआ, वैसा ही आत्मा श्रुतज्ञानप्रमाण से परोक्ष ज्ञात होता है। श्रुतज्ञान परोक्ष होने पर भी वह संदेहवाला नहीं है, किन्तु नि:संदेह है। श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण है, उस ज्ञान को अंतरोन्मुख करके जिसने अनंत धर्मवाले आत्मा को स्वीकार किया, उसे उसमें एकाग्रता होकर केवलज्ञान रूप प्रत्यक्ष प्रमाण विकसित हो जायेगा और अनंत धर्मोंवाली वस्तु भी उसके ज्ञान में प्रत्यक्ष हो जायेगी, इसलिए स्वज्ञेय और ज्ञान दोनों पूर्ण हो जायेंगे।

केवलज्ञान पूर्ण प्रत्यक्ष है और श्रुतज्ञान परोक्ष है, वह परोक्ष होने पर भी स्वसंवेदन में अंशत: प्रत्यक्ष है, श्रुतज्ञान अंतर्मुख होने से रागरहित चैतन्य स्वसंवेदन का जो अंश है, वह तो प्रत्यक्ष है। आत्मा के अनंत धर्मों को श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है। परोक्ष है, तथापि वह ज्ञान भी प्रमाण है। नि:संदेहरूप है। उस परोक्ष प्रमाण से जिसने अपने आत्मा का अनुभव किया, उसे पूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञान प्रमाण हुए बिना नहीं रहेगा।

श्रुतज्ञान प्रमाण होने पर भी वह पूर्णज्ञान नहीं है, पूर्णज्ञान तो केवलज्ञान

है, श्रुतज्ञान अपूर्ण है। पूर्णज्ञान हो जाने के पश्चात् उसमें नय नहीं होते। श्रुतज्ञान अपूर्ण है, तथापि वह भी यथार्थ प्रमाण है, केवली ने जैसा जाना, वैसे यथार्थ आत्मा को वह भी परोक्ष रूप से बराबर जानता है। साधक को ऐसे श्रुतज्ञान प्रमाण से स्वानुभव द्वारा आत्मा ज्ञात होता है।

यहाँ श्रुतज्ञान में अनंत नय और वस्तु में अनंत धर्मों की स्थापना की है, यह बात जमे बिना प्रमेय पदार्थ ज्ञात नहीं होता और श्रुतज्ञान प्रमाण नहीं होता अर्थात् प्रमाण और प्रमेय की एकता नहीं होती और न वहाँ आत्मा की प्राप्ति होती है। जिस वस्तु को प्राप्त करना हो, उसे प्रथम बराबर पहिचानना तो चाहिए न ! भगवान आत्मा की प्राप्ति करके परमात्मा होने के लिए पहले उसका यथार्थ ज्ञान करना चाहिए। आत्मा का ज्ञान किसप्रकार होता है, उसका यह वर्णन हो रहा है। जो श्रुतज्ञान अनंत नयोंवाला है – ऐसे श्रुतज्ञानपूर्वक स्वानुभव से आत्मा ज्ञात होता है।

श्रुतज्ञान अनंत नयोंवाला कब होता है ? कि अनंत धर्मोंवाले एक आत्मा को जाने तब। यदि ऐसा न जाने और आत्मा को सर्वथा नित्य, सर्वथा अनित्य, सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध – इत्यादिरूप से एक ही धर्मवाला मान ले तो उसने माना हुआ आत्मा पूर्ण (अनंत धर्मात्मक) नहीं होगा और उसका श्रुतज्ञान भी अनंत नयोंवाला नहीं होगा अर्थात् प्रमाणज्ञान नहीं होगा किन्तु मिथ्याज्ञान ही रहेगा। इसलिए यहाँ ऐसा कहा है कि अनंत नयवाले श्रुतज्ञान प्रमाण से स्वानुभव द्वारा आत्मा ज्ञात होता है। ऐसे श्रुतज्ञान को या आत्मा के अनंतधर्मों को जो स्वीकार न करे, उसे आत्मा का स्वानुभव कभी सच्चा नहीं होता।

इस जगत में अनंत आत्मा भिन्न-भिन्न हैं, प्रत्येक आत्मा में अनंत धर्म हैं, उस एक धर्म को जाननेवाला एक-एक नय है, ऐसे अनंत नयोंवाला एक श्रुतज्ञान प्रमाण है और उन धर्मों का कथन करनेवाली वाणी – इन सबको यदि स्वीकार न करे तो श्रुतज्ञान प्रमाण होकर आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता। सम्पूर्ण आत्मा के स्वानुभव बिना उसके एक-एक अंश

का, एक-एक धर्म का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता और उसके सम्यक् नय भी नहीं होते, इसलिए उसका ज्ञान मिथ्या, उसकी वाणी मिथ्या और उसका माना हुआ धर्म भी मिथ्या है। यहाँ तो साधक जीव की बात है। साधक जीव अनंत धर्मवाले आत्मा का श्रुतज्ञानप्रमाण से अनुभव करता है और उसी को सम्यक् नय होता है। वह नय-प्रमाण से आत्मा को कैसा जानता है, उसका यहाँ वर्णन करते हैं। यह नय साधक के होते हैं, अज्ञानी या केवली के नय नहीं होते। केवली को तो केवलज्ञान में आत्मा पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञात हो गया है और पूर्णता हो गई है, इसलिए अब उनको नय से कोई भी साधना करना नहीं रहा है और अज्ञानी को तो वस्तु का भान ही नहीं है, इसलिए उसके भी नय नहीं होते। नय श्रुतज्ञान प्रमाण का अंश है, वह साधक के ही होता है।

आत्मा के ज्ञान की पाँच प्रकार की अवस्था है - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान। उनमें से मुख्यरूप से श्रुतज्ञान ही आत्मा का साधक हो सकता है, क्योंकि केवलज्ञान तो छद्मस्थ जीव के होता नहीं है, अवधि और मन:पर्यय ज्ञान का विषय परपदार्थ है; इसलिए वे भी साधक नहीं होते। मतिज्ञान सामान्यरूप से जानता है, इसलिए उसमें नय नहीं पड़ते, श्रुतज्ञान प्रमाण ही अनंत धर्मवाले आत्मा को जानता है और उस प्रमाण से ही आत्मा का स्वानुभव होता है। उस श्रुतज्ञान में नय होते हैं।

अनंत धर्मोंवाला आत्मा है, वह प्रमेय है और अनंत नयोंवाला श्रुतज्ञान है, वह प्रमाण है। उसमें से अब 47 नयों द्वारा आत्मा के 47 धर्मों का वर्णन करेंगे। वस्तु में अनंत धर्म हैं, उन सबका वाणी से भिन्न-भिन्न वर्णन नहीं हो सकता। वाणी में तो अमुक ही आते हैं। यहाँ 47 नयों से 47 धर्म कहकर आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, किन्तु उसमें दूसरे अनंत धर्म भी साथ ही आ जाते हैं। नय के समूह द्वारा आत्मा कैसा ज्ञात होता है, उसका यह वर्णन है। समस्त नयों का समूह, सो प्रमाण और समस्त धर्मों का समूह, सो प्रमेय वस्तु। ऐसे प्रमाणपूर्वक प्रमेय की ओर ढलने से स्वानुभव से आत्मा ज्ञात होता है।

हे प्रभो ! यह आत्मा कैसा है ? ऐसा शिष्य ने पूछा था, उसके उत्तर में आचार्यदेव ने पहले तो संक्षेप में कहा कि आत्मा अनंत धर्मोंवाला एक द्रव्य है और वह अनंत नयोंवाले श्रुतज्ञान प्रमाण से स्वानुभव द्वारा ज्ञात होता है।

अब आचार्यदेव 47 नयों से आत्मा का वर्णन करते हैं। यहाँ एक-एक नय से एक-एक धर्म का वर्णन है, किन्तु उसमें पूरा प्रमाण है और पूरा प्रमेय साथ ही आ जाता है।

आत्मा के किसी भी धर्म को स्वीकार करनेवाले, आत्मद्रव्य के सन्मुख देखकर ही उस धर्म को स्वीकार करते हैं, न कि पर सन्मुख, क्योंकि आत्मा के अनंत धर्मों में से कोई भी धर्म, पर के आधार से नहीं है, किन्तु अनंत धर्म के पिण्डरूप आत्मद्रव्य के आधार से ही प्रत्येक धर्म विद्यमान है। इसलिए सम्पूर्ण धर्मी दृष्टि में आये बिना उसके एक-एक धर्म की स्वीकृति यथार्थ नहीं होती। नय से एक-एक धर्म को मुख्य करके देखनेवाला गौणरूप से अनंत धर्मवाली पूर्ण वस्तु को भी स्वीकार करता है, क्योंकि धर्म तो वस्तु का है। एक धर्म कहीं वस्तु से पृथक् होकर नय का विषय नहीं होता, इसलिए किसी भी नय का विषय नहीं होता, इसलिए किसी भी नय से एक धर्म को मुख्य करके देखनेवाले की दृष्टि भी अकेले धर्म पर होती नहीं है। धर्म तो धर्मी ऐसे अखण्ड वस्तु के आधार से स्थित है, इसलिए उसी पर दृष्टि रखकर एक-एक धर्म का सच्चा ज्ञान होता है। समस्त नयों के वर्णन में यह बात मुख्यतया ध्यान में रखना चाहिए।

1. द्रव्यनय से आत्मा का वर्णन

वह अनंत धर्मात्मक आत्मद्रव्य द्रव्यनय से, पट मात्र की भांति, चिन्मात्र है।

अनंत धर्मात्मक पूर्ण आत्मद्रव्य है, वह प्रमाण का विषय है और नय से देखने पर वही आत्मद्रव्य एक धर्मात्मक दिखाई देता है। नय अर्थात् ज्ञान का पक्ष। वस्तु के सामान्य पक्ष को जाननेवाला ज्ञान, सो द्रव्यनय है।

जिसप्रकार वस्त्र में कितने ताने बाने हैं, ऐसा तानेबाने का भेद किये बिना एक वस्त्ररूप से ही उसे जानना कि यह वस्त्र है, उसीप्रकार आत्मद्रव्य में अनंत गुण-पर्याय के भेदों को गौण करके 'आत्मा चिन्मात्र द्रव्य है' ऐसा सामान्यरूप से लक्ष में लेना उसका नाम द्रव्य है। आत्मा में तो एकसाथ अनंत धर्म हैं किन्तु उनमें से 'आत्मा चैतन्य मात्र द्रव्य है' - ऐसे धर्म की मुख्यता से आत्मा को लक्ष में लेने का नाम द्रव्यनय है। उस द्रव्यनय से देखने पर आत्मा चैतन्यमात्र है।

आचार्यदेव ने समस्त बोलों में उदाहरण देकर समझाया है। यहाँ वस्त्र का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार वस्त्र में कितने ताने, कितनी लंबाई-चौड़ाई या कैसा रंग है - ऐसे किसी भेद को लक्ष में न लेकर एकरूप सामान्य वस्त्ररूप से देखने पर 'यह वस्त्र है' - ऐसा ज्ञात होता है, उसीप्रकार अनंत धर्मोंवाले आत्मा को द्रव्यनय से देखने पर सिद्ध या संसारी, साधक या बाधक ऐसे कोई पर्याय भेद या दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे गुण-भेदों को गौण करके एकरूप सामान्य चैतन्यरूप से आत्मा ज्ञात होता है। आत्मा में गुण-पर्याय के भेद किये बिना सामान्यरूप से देखने पर वह चैतन्यमात्र द्रव्य है, द्रव्यनय से ऐसा आत्मा प्रमेय होता है। इसप्रकार आत्मा के धर्म को जानकर श्रुतज्ञान को प्रमाण करके स्वानुभव करे, तभी अनंत धर्मात्मक आत्मा जैसा है, वैसा प्रमेय होता है।

'इतने अधिक नयों से आत्मा को जानने की क्या आवश्यकता है ?' मात्र 'आत्मा है' ऐसा जान ले तो नहीं चलेगा ? ऐसा कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर - अरे भाई ! आत्मा है - ऐसा ओधिक रूप से तो सभी कहते हैं, किन्तु आत्मा में जैसे अनंतधर्म हैं, वैसे धर्मों से उसे पहिचाने, तभी आत्मा को जाना कहलाता है। 'आत्मा है' ऐसा कहे, किन्तु उसके अनंत धर्मों को यथावत् न जाने तो उसने आत्मा को जाना नहीं कहलाता। अनेक लोग आत्मा है - ऐसा कहते हैं, किन्तु उसमें अनंत धर्म हैं, ऐसा नहीं मानते,

या तो सर्वथा एकान्त नित्य अथवा एकान्त एकान्त अनित्य, एकान्त शुद्ध या एकान्त अशुद्ध मानते हैं, इसलिए यहाँ आचार्यदेव ने अनेक नयों से आत्मा के धर्मों का वर्णन करके वस्तुस्वरूप को बहुत ही स्पष्ट किया है।

इन नयों में विकल्प की या राग की मुख्यता नहीं है किन्तु वस्तुस्वरूप के ज्ञान की मुख्यता है। तत्त्व के अन्वेषण काल में अर्थात् वस्तुस्वरूप का निर्णय करने के लिए यह नय कार्यकारी हैं। इन नयों से वस्तु का निर्णय करना, वह ज्ञान की निर्मलता का कारण है।

आत्मा अपने अनंत धर्मों से और पर के अभाव से स्थायी द्रव्य है। यदि आत्मा अनंत धर्मों वाला न हो तो वह स्थायी रहकर बदले कैसे ? पर से भिन्न स्वरूप से कैसे रहे ? यदि आत्मा में 'नित्य' धर्म ही हो और 'अनित्य' धर्म न हो तो वह पलट ही नहीं सकता, यदि 'अनित्य' धर्म ही हो और 'नित्य' धर्म न हो तो वह नित्य स्थायी नहीं रह सकता, पलटने में उसका नाश ही हो जायेगा। पुनश्च, आत्मा में 'अस्ति' धर्म ही हो और 'नास्ति' धर्म न हो तो वह पररूप भी हो जायेगा। इसप्रकार नित्य-अनित्य, अस्ति-नास्ति आदि अनंत धर्म आत्मा में एकसाथ न रहें तो आत्मवस्तु ही सिद्ध नहीं होगी। अस्ति-नास्ति, द्रव्य-पर्याय आदि अनंत धर्मों के बिना आत्मा रह ही नहीं सकता और उसे जाननेवाला ज्ञान भी यदि अनंत नयोंवाला न हो तो उन अनंत धर्मों को नहीं जान सकता। अनंत धर्मात्मक एक आत्मा को अनंत नयात्मक एक ज्ञान से जाने, तभी आत्मा ज्ञात हो। पूर्ण अनंत धर्मात्मक पदार्थ का ज्ञान, सो प्रमाण है और वस्तु के एक-एक धर्म को जाने, वह एक-एक नय है। श्रुतज्ञान से आत्मस्वभाव को बराबर जानकर उपयोग को उसमें युक्त करने का नाम ही योग है। श्रुतज्ञान से आत्मा को यथावत् जाने बिना उसके साथ उपयोग की युक्तता नहीं होती, इसलिए ज्ञान उसमें एकाग्र नहीं हो सकता, उसमें एकाग्रता के बिना उसका ध्यान नहीं होता। जाने बिना ध्यान किसका ? पहले प्रमाण द्वारा ऐसे आत्मा को प्रमेय करे, तभी उसमें

एकाग्रतारूप ध्यान हो सकता है, इसलिए प्रथम समस्त पक्षों से आत्मा का निर्णय करना चाहिए।

अनादिकाल से जीव ने सबकुछ किया है, किन्तु अपने आत्मस्वभाव को कभी नहीं जाना है, यदि एक बार भी आत्मा को बराबर जान ले तो उसके परम आनंद की प्राप्ति हुए बिना न रहे। आत्मा कौन है और वह कैसे प्राप्त होता है ? यह जानने की जिसे जिज्ञासा जागृत हुई है, ऐसे शिष्य के प्रश्न का यह उत्तर चल रहा है। आत्मा कैसा है, उसका यह वर्णन हो रहा है, उसकी प्राप्ति का उपाय फिर कहेंगे। प्रथम आत्मा को यथावत् जाने बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती।

अनंत धर्मात्मक आत्मद्रव्य कहा, वह तो समान्य-विशेष का पिण्ड, प्रमाण का विषय है और यहाँ आत्मा को सामान्य चिन्मात्र कहा, वह द्रव्यनय का विषय है, विशेष को गौण करके एक सामान्य पक्ष है। अनंत धर्मात्मक एक आत्मद्रव्य वह प्रमाण का विषय है, उसकी बात यह की, अब यहाँ नय के विषय का वर्णन है। प्रमाण के विषय रूप जो सम्पूर्ण आत्मद्रव्य है, उसके एक धर्म को नय जानता है, नय का विषय वस्तु का एक धर्म है। गुण-पर्याय के भेद को गौण करके, सामान्य चिन्मात्र पक्ष से आत्मा को लक्ष में लेने का नाम द्रव्यनय है।

आत्मा के अनंत धर्मों में से यह एक धर्म है, उसके साथ दूसरे अनंत धर्म हैं, उन्हें यदि न माने तो ज्ञान प्रमाण नहीं होता। कोई ऐसा कहे कि 'आत्मा तो चैतन्य मात्र ही है और विकार तो पर के कारण होता है' तो ऐसा माननेवाले ने आत्मा के समस्त धर्मों को नहीं माना है। जिसप्रकार चैतन्यमात्रपना आत्मा का एक धर्म है, उसीप्रकार अवस्था में विकार हो तो वह भी आत्मा की पर्याय का धर्म है, उसे न माने तो प्रमाण ज्ञान नहीं होता।

आत्मा चैतन्यमात्र स्वभाव है, इसप्रकार जो आत्मा के चिन्मात्र धर्म को जानता है, वह जीव अपना ज्ञान बाहर से आना नहीं मानता, क्योंकि चैतन्य

धर्म तो अपना है, उसी में से विशेष ज्ञान आता है, विशेष ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता। किसी शास्त्र में से या वाणी के श्रवण में से आत्मा का ज्ञान नहीं आता, ज्ञान तो आत्मा के चैतन्य मात्र धर्म में से ही आता है, वह धर्म आत्मा के अपने ही आश्रय से है। आत्मा का जो सामान्य चैतन्यस्वभाव है। वह स्वयं ही त्रिकाल विशेष रूप से परिणमित होता जाता है, अज्ञानी को भी उसका जो सामान्य चैतन्यस्वभाव है, वही विशेष ज्ञानरूप से परिणमित होता जाता है, किन्तु उसे उस सामान्य की प्रतीति नहीं है, इसलिए सामान्य के साथ विशेष की एकता वह नहीं करता किन्तु पर के साथ एकता मानता है, इसलिए उसका विशेष अयथार्थ होता है।

द्रव्यनय से आत्मा को चिन्मात्र कहा है, यह चिन्मात्र धर्म कहाँ देखना ? पर में नहीं किन्तु आत्मवस्तु में देखना चाहिए, क्योंकि वह धर्म पर में नहीं है किन्तु अपने में ही है।

प्रश्न – आत्मा तो अत्यन्त सूक्ष्म है, उसे देखने का कोई सूक्ष्मदर्शक यंत्र नहीं होगा ?

उत्तर – आत्मा को किस प्रकार देखना चाहिए, उसी की यह बात चल रही है, श्रुतज्ञान को अंतरोन्मुख करना ही आत्मा को देखने का सूक्ष्म दर्शक यंत्र है। आत्मा स्वयं सूक्ष्म-अरूपी वस्तु है, वह द्रव्य अरूपी, उसके गुण अरूपी और उसकी पर्यायें भी अरूपी हैं, इसलिए वे तीनों सूक्ष्म और उन्हें जाननेवाला श्रुतज्ञान प्रमाण भी सूक्ष्म है, आत्मोन्मुखता वाला वह ज्ञान ही सूक्ष्म आत्मा को देखने का सूक्ष्म दर्शक यंत्र है, इसके अतिरिक्त इन्द्रियादि किन्हीं बाह्य पदार्थों में या विकल्प से आत्मा ज्ञात नहीं हो सकता। एक बार यथार्थ श्रवण करके ऐसी वस्तु को समझे तो कहीं संदेह न रहे। देवाधिदेव सर्वज्ञपरमात्मा कहते हैं कि तेरा आत्मा ही तेरा चैतन्यदेव है, तू ही अपने अनंत धर्मों को धारण करनेवाला है, उसे पहिचानकर उसकी आराधना कर तो तेरी परमात्मदशा प्रगट हो जाये।

क्रमशः

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

श्रुत परम्परा

वस्तु स्वरूप अनादि-अनन्त व्यवस्थित है। उसका प्रतिपादन करनेवाले भी अनादि से होते आ रहे हैं। जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के वर्तमान हुण्डा-अवसर्पिणी काल से सम्बन्धित चतुर्थ काल में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीरस्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर हुए, जिन्होंने इस अनादि-अनन्त वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन अपनी दिव्यध्वनि द्वारा किया।

महावीरस्वामी के निर्वाण के पश्चात् तीर्थंकर-परम्परा समाप्त हो गई। उनके पश्चात् जैनधर्म के मुखिया व संरक्षकों के रूप में गणधरों की मुख्य भूमिका रही थी। गणधरों के पश्चात् जितने भी प्रसिद्ध आचार्य, मुनि एवं भट्टारक हुए हैं, उन्होंने अपने सदाचार और सद्विचारों से न केवल जैन समाज को अनुप्राणित किया, बल्कि अपनी अमर लेखनी द्वारा जैन साहित्य को भी समृद्ध बनाया।

आज तक यह परम्परा अपने समृद्ध रूप से चली आ रही है कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पश्चात् महावीरस्वामी ने संघ को चार भेदों में विभाजित किया था। ये चार भेद क्रमशः मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविका थे। निर्ग्रन्थ रहकर तप-साधना करनेवालों को मुनि कहा गया। आर्यिका अपनी शारीरिक स्थिति के कारण यद्यपि वस्त्रधारी होती हैं, तथापि उन्हें उपचार से महाव्रती कहा गया है।

महावीरस्वामी के निर्वाण के पश्चात् उनकी संघ व्यवस्था यथावत् चलती रही। बाद में प्रथम गणधर गौतमस्वामी ने जैन संघ को नेतृत्व प्रदान किया। इन्होंने 12 वर्ष तक संघ नायक के रूप में आत्म-साधना कर निर्वाण पद प्राप्त किया। पट्टावली के अनुसार भगवान महावीरस्वामी के पश्चात् निम्नानुसार केवली, श्रुतकेवली एवं अंगधारी आचार्य हुए -

तीन केवली - गौतमस्वामी - केवली काल - 12 वर्ष
सुधर्मास्वामी - केवली काल - 12 वर्ष
जम्बूस्वामी - केवली काल - 38 वर्ष

क्रमशः

साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव श्री जयसेनजी (सप्तम्)

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अध्यात्म साहित्य समयसार को जैसा श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने द्रव्यदृष्टि प्रधान शैली से संजोया है, उसी भाँति आपने उसी ग्रन्थ को चारित्रप्रधान शैली से संयोया है। इस भाँति श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने प्रवचनसार ज्ञानप्रधान शैली टीका की, तो आपने उस ही ग्रन्थ की चारित्रप्रधान शैली से टीका की। आप भगवान अमृतचन्द्राचार्य के पश्चात्वर्ती आचार्य थे, भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव के जिन ग्रन्थों की अमृतचन्द्राचार्यदेव ने टीका की, आपने भी उन्हीं ग्रन्थों पर टीका की। वे टीकाएँ उसी शैली से करने का कोई हेतु नहीं रहता। अत: आपने उन्हीं ग्रन्थों की अन्य शैली से टीका की।

आपके ग्रन्थ में आपने अक्सर शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ व भावार्थ निकालकर सभी गाथाओं की टीका की है। इस शैली से सभी जीवों को यथासम्भव सर्व जगह अर्थ करने को आप कहते हैं, जिससे आगम के आलोक में वक्ता का यथार्थ आषय स्पष्ट हो। आपने आगमार्थ के लिए कई शास्त्रों को प्रमाणरूप से पेश किया है, जिससे स्पष्ट होता है, कि आप बहुश्रुताभ्यासी आचार्य थे। आपकी रचना का आपके पश्चात्वर्ती अचार्यों ने खूब उपयोग किया है।

आपके सम्बन्ध में आपने स्वयं बताया है, कि 'सदाधर्म में रत प्रसिद्ध मालु नामक साधु हुए हैं। उनका पुत्र साधु महीपति हुआ है। उनसे यह चारूभट नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है, जो सर्वज्ञ परमात्मा व आचार्यों की आराधनापूर्वक सेवा किया करता है। उस चारूभट अर्थात् आचार्य

जयसेनजी ने आपने पिता की भक्ति के विलोप होने से भयभीत हो, इस प्राभृत नामक ग्रन्थ की टीका रची है'। जिससे ज्ञात हाता है, कि आपका गृहस्थदशा का नाम चारूभट्ट था व पिता महिपति साधु व दादा मालु साधु थे। वे सभी मुनिदीक्षाधारी होंगे– ऐसा अनुमान हो सकता है, तब ही आपने उनके लिए शब्द का प्रयोग किया है। इस बात से यह भी ज्ञात होता है, कि आपके पिता की भावनावश प्रवचनसार ग्रन्थ की टीका या तीनों प्राभृतों की टीका की है। ऐसी प्रशस्ति आपने अन्य दो (समयसार और पंचास्तिकाय) ग्रन्थों की टीका में नहीं लिखी है।

आपने, अपने गुरु परम्परा के बारे में लिखा है, कि मूलसंघ के निर्ग्रन्थ तपस्वी श्री वीरसेनाचार्य हुए, उनके शिष्य अनेक गुणों के धारी आचार्य सोमसेन हुए और उनका शिष्य यह जयसेन हुआ है। इससे ज्ञात होता है, कि आचार्य सोमसेनजी आपके दीक्षागुरु होंगे, क्योंकि आपने आगे श्रीमान् त्रिभुवनचन्द्र गुरु को भी नमस्कार किया है। अतः श्री त्रिभुवनचन्द्राचार्य आपके विद्यागुरु होंगे। आप, सेन गणान्वयी आचार्य अवश्य हैं–ऐसा स्पष्ट है। आपने भगवान आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी के समयसार, प्रवचनसार व पंचास्तिकाय आदि तीन शास्त्रों की टीका की है।

आपने इन टीकाओं में से समयसार की टीका विस्तारुचि शिष्य के लिए, प्रवचनसार की टीका मध्यमरुचि शिष्य के लिए व पंचास्तिकायसंग्रह की टीका संक्षेप रुचि शिष्य के लिए बनाई है।

आपकी तीनों टीकाओं का नाम 'तात्पर्यवृत्ति है।

आपका समय ई. सन् की 11 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध या 12वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है।

आचार्य श्री जयसेनजी (सप्तम्) को कोटि कोटि वन्दन ।

भगवान आचार्यदेव श्री जिनचन्द्रजी

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के गुरु जिनचन्द्रस्वामी से आप भिन्न आचार्य जिनचन्द्रजी हैं। आपने 'सिद्धान्तसार' ग्रन्थ रचना की है। आपके 'सिद्धान्तसार' ग्रन्थ पर से ज्ञात होता है कि, इस ग्रन्थ पर 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' का काफी असर है। इस पर से आप जिनसिद्धान्त के ज्ञाता थे। यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है।

जिनचन्द्र नामक अनेक आचार्य हुए है। उन सबसे भिन्न, अद्‌भुत प्रज्ञा के धारी आप आचार्य अपने में अनेरे हैं।

आपके ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि आपका समय गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड के रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के पश्चात् ई. सन् की 11 वीं-12 वीं शताब्दी निश्चित होता है।

आचार्य श्री जिनचन्द्रजी भगवन्त को कोटि कोटि वन्दन।

हार्दिक बधाई

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के होनहार मंगलार्थी छात्र क्षितिज सेठी झालरापाटन, राजस्थान निवासी का राजस्थान प्रशासनिक सेवा में प्रथम प्रयास में ही चयन होने पर तीर्थधाम मंगलायतन परिवार की ओर से हार्दिक बधाई। आपका बड़ा भाई दिविज सेठी, चचेरा भाई दर्शिल सेठी मंगलार्थी छात्र रहे हैं।

ज्ञात हो कि यहाँ से पढ़कर निकलनेवाले मंगलार्थी छात्र देश ही नहीं अपितु विदेश में भी उच्च पदों पर आसीन रहकर धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में भी अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहे हैं।

प्रेरक-प्रसंग

अपने जैसे सबके प्राण

मगध देश की राजग्रही नगरी के राजा श्रेणिक एक बार सभा में बैठे थे। सभी मन्त्री सामन्त इत्यादि यथास्थान बैठे हुए थे। प्रसंग- प्राप्त बातचीत के दौरान जो मांस-लुब्ध सामन्त थे, वे बोले—आजकल मांस विशेष सस्ता है, अनाज महँगा है। यह बात राजकुँवर अभयकुमार ने सुनी तो उन्हें अच्छी नहीं लगी और मन ही मन वे बेहद दुखी हुए। सामन्तों को बोध देने का निश्चय किया। सायं सभा विसर्जित हुई, राजा अन्त:पुर चले गये।

उसके बाद अभयकुमार तैयार हो, जिस-जिसने मांस की बात कही थी, उस-उसके घर गये। जिसके घर गये, वहाँ स्वागत करने के बाद उसने पूछा - 'आप किसलिए परिश्रम करके मेरे घर पधारे हैं?' अभयकुमार ने कहा- 'महाराज श्रेणिक के अकस्मात् महारोग उत्पन्न हुआ हैं।' वैद्यों को इकट्ठे करने पर उन्होंने कहा कि मनुष्य के कोमल कलेजे का सवा पैसा बराबर मांस हो तो यह यह रोग मिट सकता है। आप राजा के प्रिय भक्त हैं, इसलिए आपके यहाँ यह मांस लेने आया हूँ।' सामन्त ने विचार किया- 'कलेजे का मांस मैं मरे बिना कैसे दे सकता हूँ?' ऐसा कहने के बाद अपनी बात राजा के आगे प्रकट न करने के लिए अभयकुमार को बहुत-सा द्रव्य दिया। इसी प्रकार प्रत्येक सामंत धन देता गया और वह लेते गये। इस प्रकार अभयकुमार सभी सामंतो के घर फिर आये। सभी मांस न दे सके और अपनी बात छिपाने के लिए उन्होंने बहुत-सा द्रव्य दिया। फिर दूसरे दिन सभा लगी, तब सभी सामंत अपने-अपने आसन पर आकर बैठ गये। राजा भी सिंहासन पर विराजमान था। सामन्त आ-आकर राजा से कल की कुशल पूछने लगे। राजा बात से विस्मित हुआ। अभयकुमार की ओर देखा, तब अभयकुमार बोले—

'महाराज! कल आपके सामन्त सभा में बोले थे कि आजकल मांस सस्ता मिलता है, इसलिए मैं उनके यहाँ मांस लेने गया; तो सबने मुझे बहुत द्रव्य तो दिया; परन्तु कलेजे का सवा पैसा भर मांस नहीं दिया। तब यह मांस सस्ता है या महँगा? यह सुनकर सब सामन्त शर्म से नीचे देखने लगे; कोई कुछ बोल न सका। फिर अभयकुमार ने कहा- 'यहाँ मैंने आपको दुख देने के लिए नहीं किया, परन्तु बोध देने के लिए किया है। यदि हमें अपने शरीर का मांस देना पड़े तो कैसा दुख होता है? क्योंकि हमें अपनी देह प्रिय है। इसी प्रकार सभी जीवों का अपना जीवन प्यारा होगा। जैसे हम अमूल्य

वस्तुएँ देकर भी देह को बचाते हैं, वैसे ही उन बेचारे मूक प्राणियों को भी होना चाहिए। हम समझवाले बोलते-चलते प्राणी हैं, वे बेचारे मूक और न समझ हैं, उन्हें मौत का दु:ख दें, यह भयंकर पाप कार्य है या नहीं ? हमें इस वचन को निरन्तर ध्यान में रखना चाहिए कि सब प्राणियों कि प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है; और सब जीवों की रक्षा करना, इसके जैसा अन्य धर्म नहीं है। अभयकुमार के भाषण से श्रेणिक महाराजा सन्तुष्ट हुए, सभी सामन्त भी प्रतिबद्ध हुए। उन्होंने उस दिन से मांस न खाने की प्रतिज्ञा कर ली।

शिक्षा - सभी जीवों को अपना जीवन प्यारा होता है। जैसे हम मरना नहीं चाहते, वैसे ही सभी प्राणी मरने से बचते हैं। अत: कभी किसी प्राणी का घात नहीं करना चाहिए।

साभार : बोध कथायें

षट्खण्डागम ग्रन्थ की द्वितीय पुस्तक की वाचना सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार कीर्तिमान रचते हुए प्रथम श्रुतस्कन्ध '**षट्खण्डागम धवला टीका सहित**' वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। जिसकी द्वितीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 01 अप्रेल से समापन 08 जुलाई 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। इस श्रुतपंचमी पर्व पर श्री षट्खण्डागम ग्रन्थजी ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराके महावीर जिनालय एवं बाहुबली जिनालय में विराजमान किये गये।

तृतीय पुस्तक की वाचना 09 जुलाई 2021 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - विद्वान पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; प्रो. जयन्तीलाल जैन, मंगलायतन विश्वविद्यालय एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर - 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

सायंकाल 07.30 से 09.00 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

(विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर)

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– सूरज के सामने खड़े होकर प्रकाश तथा ताप तो बिना इच्छा किये ही मिल जाते है, पेड़ के पास छाया तो बिना इच्छा के ही मिल जाती है।

उसी प्रकार– देव–गुरु–शास्त्र के सानिध्य में रहने पर सुख–शान्ति तो बिना इच्छा किये ही मिल जाती है तथा आत्मा के सानिध्य में रहने से अनन्त चतुष्टय तथा मोक्षरूपी लक्ष्मी तो बिना इच्छा के सहज ही मिल जाती है।

जैसे– असाता (पाप) के उदय में प्रतिकूलताएँ तथा मुसीबतें तो बिना इच्छा के ही मिल जाती है।

उसी प्रकार– साता (पुण्य) के उदय में अनुकूल सामग्री तो सहजरूप से ही मिल जाती है।

जैसे– विष्टा का कीड़ा विष्टा में ही राजी रहता है। वहाँ से हटना भी नहीं चाहता है।

उसी प्रकार– अज्ञानी जीव संसार में ही राजी रहता है। संसार से निकलना ही नहीं चाहता है।

जैसे– हजार गेहूँ के दाने सामान आकार और गुणों वाले हों वे सब समान है तो ही सभी दाने अलग–अलग है, एक नहीं ।

उसी प्रकार– अनन्त आत्माओं को द्रव्य स्वभाव तथा गुण समान है तथापि सभी आत्मायें एक नहीं है, अलग–अलग है।

जैसे– युद्ध में तलवार चलाने का प्रसंग आवे वहाँ राजपूत की शूरवीरता छिपी नहीं रहती, वह घर के कोने में चुपचाप नहीं बैठता, उसका शौर्य उछल जाता है। वह मरण से भी नहीं डरता है।

उसी प्रकार– जहाँ दान का प्रसंग आता है वहाँ उदार हृदय के मनुष्य का हृदय छिपा नहीं रहता, धर्म की रक्षा की खातिर अथवा प्रभावना खातिर स्वाहा करने का प्रसंग आवे तो भी पीछे मुड़कर नहीं देखता।

जिस प्रकार– चतुर किसान बीज की रक्षा करके बाकी का अनाज भोगता है और बीज बोता है उसके हजारों गुने दाने पकते है।

उसी प्रकार– धर्मी जीव पुण्य से प्राप्त लक्ष्मी का उपभोग धर्म की रक्षा पूर्वक करता है, दानादि सत्कार्यों में लगाकर उत्कृष्ट पुण्य की बढ़ोत्तरी हजारों गुणा सहजरूप से होती रहती है।

क्रमशः

संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में शान्तिविधान सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : श्री मुकेशचन्द्र जैन मेरठ के परिवार की ओर से रविवार 11 जुलाई 2021 को शान्तिविधान सम्पन्न हुआ। जिसमें उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रजनी जैन, उनकी पुत्रवधु और सुपुत्र चिराग जैन, मंगलायतन परिवार और अजित जैन बड़ौदा भी इस अवसर पर उपस्थित थे।

वर्धमान ज्ञानतीर्थ का भव्य शिलान्यास सम्पन्न

दिल्ली : दिव्य देशना ट्रस्ट दिल्ली के तत्त्वावधान में ग्रेटर नोएडा में श्री महावीरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर एवं श्री सन्मति छात्रावास का भव्य शिलान्यास समारोह 15 जुलाई 2021 को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री अजितप्रसाद जैन, आदीश जैन, चिराग जैन, स्वप्निल जैन, पण्डित सुरेन्द्र जैन आदि उपस्थित थे।

गोष्ठी सम्पन्न होगी

सहजता संगोष्ठी – सागर, मकरोनिया में शुक्रवार, 23 जुलाई से मंगलवार, 27 जुलाई 2021 तक सहजता विषय पर संगोष्ठी का आयोजन सर्वोदय अहिंसा चैनल के तहत पण्डित अरुण मोदी, डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर के मार्गदर्शन में होगी।

वीरशासन जयंती संगोष्ठी – संस्कृति विभाग उत्तरप्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान द्वारा त्रिदिवसीय वेबिनार संगोष्ठी रविवार, 25 जुलाई से मंगलवार, 27 जुलाई 2021 तक वीरशासन जयन्ती पर प्रो. अभयकुमार जैन और डॉ. राकेश सिंह के मार्गदर्शन एवं श्री आनन्दकुमार, आईएएस, विशेष सचिव, संस्कृति उत्तरप्रदेश; श्री शिशिर, आईएएस, निर्देशक, संस्कृति, उत्तरप्रदेश; श्री मुकेशकुमार मेश्राम, आईएएस, प्रमुख सचिव, संस्कृति अध्यक्ष उ.प्र. जैन विद्या शोध संस्थान के सहयोग से सम्पन्न होगी।

वीरशासन जयन्ती पर्व आयोजन

दिल्ली : जैनिज्म थिंकर संस्थान, दिलशाद गार्डन दिल्ली एवं कुन्दकुन्द कहान भक्ति पाठशाला, खण्डवा द्वारा वीरशासन जयन्ती के उपलक्ष्य पर दो दिवसीय शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

जिसमें आत्मार्थी कन्या विद्यानिकेतन की बालिकाओं एवं भगवान आदिनाथ विद्यानिकेतन के मंगलार्थी छात्रों एवं अन्य प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा स्वाध्याय, भक्ति, पूजन, गोष्ठी का लाभ ऑनलाईन मिलेगा।

बढ़ते चरण

तीर्थधाम चिदायतन

अन्तर में आनन्दस्वरूप का स्वाद लेकर आत्मा में अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसका स्वाद-अनुभव लेकर और आगे उग्ररूप से आनन्द के स्वाद में स्थिर होता है, तब उसे सप्तम गुणस्थान प्रगट होता है, फिर विकल्प उठे तो छठवाँ गुणस्थान आता है—ऐसा छठवाँ-सातवाँ हजारों बार आता है। समझ में आया? उसका छठवें का-सातवें का काल बहुत थोड़ा है, परन्तु वेदन में सप्तम आने पर बहुत अन्तर थोड़े काल आनन्द का वेदन हो जाता है।

पण्डित दौलतराम, छहढाला प्रवचन (ढाल 6), पृ. 525

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com